अतीतजीविता नहीं है इतिहास

नन्दकिशोर आचार्य से विश्वंभर की बातचीत

इस साक्षात्कार में आचार्य जी बताते हैं कि वर्तमान में इतिहास जिस तरह पढ़ाया जाता है वह इंसान को अतीतजीवी बनाता है लेकिन वास्तव में इतिहास मानव जीवन की गतिशीलता और सृजनात्मकता के विकास का अध्ययन है। वे बताते हैं कि इतिहास संपूर्ण मनुष्य जाति का अनुभव है। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद जैसी विचारधारा के बारे में उनका कहना है कि न तो यह विचारधारा संस्कृति की समझ रखती है और न ही राष्ट्र की। यह विचारधारा मानती है कि सांस्कृतिक गतिशीलता और सृजनात्मकता रुक चुकी है।

प्रश्न : हमारे यहां स्कूली शिक्षा में बच्चों को इतिहास के नाम पर कुछ घटनाओं का विवरण सिलसिलेवार पढ़ाया जाता है। जिनमें से कुछ को बच्चे याद रख पाते हैं और कुछ को भूल जाते हैं। बच्चों को इतिहास पढ़ाने के संदर्भ में पहला सवाल यही आता है कि आखिर बच्चों को इतिहास क्यों पढ़ाया जाना चाहिए और हम इस संदर्भ में इतिहास को कैसे समझें ? अर्थात् इतिहास क्या है ?

उत्तर : दरअस्ल 'इतिहास' और 'हिस्टोरिया' दो अलग-अलग शब्द हैं और इन दोनों के अर्थ थोड़े अलग-अलग हैं। मोटेतौर पर समझने के लिए हम उनको एक ही अर्थ में इस्तेमाल कर लेते हैं। यदि इन दोनों पदों का अर्थ किया जाए तो मूलतः हिस्टोरिया का अर्थ 'वह जो हो चुका है' और इतिहास का अर्थ 'वह जो सदैव घटित होता रहता है'। एक विषय के रूप में इतिहास को क्यों जाना जाए, इसी से निकलता है कि इतिहास क्या है। यदि हम अतीत में जो कुछ हुआ है, उसे इतिहास मान लें तो उसे भी क्यों जानना चाहते हैं, वह तो हो चुका है। उसे अब जानने से क्या लाभ होना है ?

अतीत में जो हो चुका है, उसे हम इसलिए जानना चाहते हैं कि जो कुछ पहले हुआ है, उसमें क्या सही था और क्या गलत था। वह कैसे हुआ है ? किन कारणों से हुआ है ? क्या चीजें हैं जो मनुष्य को गतिशील करती हैं ? इन सवालों के जवाब जानने के लिए हम इतिहास की तरफ जाते हैं। यह कहना एक सीमा तक सही है कि यह अतीत का अध्ययन है। यदि यह कहें कि कैसे चीजें घटित होती रहती हैं, यह जानने की कोशिश करना इतिहास है। इतिहास को देखने की कई दृष्टियां विकसित हुई हैं। मोटेतौर पर हम कह सकते हैं कि एक दृष्टि मानती है कि महापुरुषों के जीवन से इतिहास बनता है। दुनिया में जो भी परिवर्तन घटित होते हैं वे कुछ महापुरुषों के कारण होते हैं। वे महापुरुष धार्मिक हो सकते हैं, राजनीतिक हो सकते हैं, वैज्ञानिक हो सकते हैं। यानी वे किसी तरह से बड़े लोग हैं। इसे हम इतिहास की रोमेंटिक या व्यक्तित्ववादी व्याख्या कहते हैं। मुख्यतः यह व्यक्तित्वों पर केन्द्रित होता है। बड़े-बड़े महापुरुषों के बारे में इसी दृष्टि से इतिहास पढ़ाया जाता है।

दूसरे, यह माना जाता है कि इतिहास को हमारा आर्थिक जीवन तय करता है। मनुष्य को आर्थिक जीवन जीने के लिए विभिन्न साधनों की जरूरत पड़ती है। जीवन को और बेहतर बनाने के लिए और साधनों की जरूरत पड़ती है। इन साधनों का उत्पादन कैसे होता है ? कैसे आर्थिक जीवन चलता है ? इस दृष्टि में यकीन करने वाले मानते है कि भौतिक संसाधन ही मनुष्य के संपूर्ण जीवन का आधार हैं। अतः वे इतिहास का भी आधार हैं। क्योंकि इतिहास अंततः मनुष्य के जीवन का विकास है। इसे इतिहास की आर्थिक व्याख्या कहते हैं। इसका एक रूप मार्क्सवाद है तथा अन्य रूप भी हैं। तीसरी एक और दृष्टि है जो मानती है कि

लेखक परिचय : हिन्दी के जाने-माने चिन्तक, कवि।

प्रकाशन : 'आती है जैसे मृत्यु', 'वह एक समुद्र था' (कविता संग्रह), 'देहान्तर' (नाटक), 'संस्कृति का व्याकरण' आदि।

सम्पर्क : सुथारों की बड़ी गुवाड़, बीकानेर-334005 राजस्थान

इतिहास अंततः विचारों का इतिहास है। यानी प्रत्येक समय में कोई न कोई विचार प्रचलित या प्रमुख रहा है। उन विचारों के आलोक में या विचारों के विकास के आलोक में ही इतिहास को देखा जाना चाहिए। इसीलिए कहा भी गया है कि संपूर्ण इतिहास विचारों का इतिहास है। हीगेल जैसे आदर्शवादी दार्शनिक मानते हैं कि पूरा इतिहास एक चरम प्रत्यय की तरफ प्रयाण है। इस तरह और भी कई दृष्टियां हो सकती हैं। इन सभी को मिलाकर देखने की कोशिश में यह समझ में आता है कि इतिहास अंततः मनुष्य के विकास का इतिहास है। यदि दूसरे शब्दों में कहें तो कह सकते हैं कि यह मनुष्य की सृजनात्मकता के विकास का इतिहास है। यहां विकास का तात्पर्य केवल जैविक रूप से नहीं है- बल्कि विकास का तात्पर्य मनुष्य की रचनात्मकता से है कि वह कैसे रूप ग्रहण करती है, कैसे विकसित होती चली जाती है। हम एक विषय के रूप में इतिहास का अध्ययन इसीलिए करना चाहते हैं। फिर चाहे इतिहास का अध्ययन अतीत में घटी घटनाओं के रूप में करें या निरंतर घटित होते रहने वाले के रूप में। चाहे महापुरुषों के आधार पर करें या विचारों के आधार पर करें और चाहे आर्थिक जीवन के आधार पर करें। इसमें समझने की मूल बात यही है कि जब से दुनिया बनी, तब से किस तरह वह आगे बढ़ती गई है ? उसके आगे बढ़ने में क्या चीजें साधक रही हैं और क्या चीजें बाधक रही हैं ? वे कौनसे कारक तत्व हैं जिनके कारण मनुष्य गतिशील होता है ? कौनसी चीजें उसकी गतिशीलता को रोकती हैं, बाधा पैदा करती हैं ? दूसरी तरह कहा जा सकता है कि पूरे मनुष्य जीवन की सृजनात्मकता के विविध रूपों का उद्‌भव कैसे होता है या किन परिस्थितियों के सामने मनुष्य की सृजनात्मकता क्या रूप ग्रहण करती है ? उसकी सृजनात्मकता को प्रेरित करने वाली कौन-सी चीजें हैं ? उसकी सृजनात्मकता को चुनौती देने वाली चीजें कौन-सी हैं ? उसमें बाधा पैदा करने वाली चीजें कौनसी हैं ? इन समस्याओं को समझने के लिए इतिहास पढ़ा जाता है। इतिहास किन्हीं दो-चार राजाओं के विवरण या दो-चार महापुरुषों के जीवन के विवरण जानने तक सीमित नहीं है। ये विवरण रोचक हो सकते हैं और उन महापुरुषों की सृजनात्मकता कहीं ज्यादा सघन रूप में व्यक्त होती दिखाई दे सकती, लेकिन होते वे अपने समय से प्रतिकृत ही हैं। अतः एक खास समय में मनुष्य की सृजनात्मकता कैसे खास परिस्थिति के साथ सृजनात्मक रूप से अन्तः क्रिया करती है, यह जानना इतिहास को जानना है। एक विषय के रूप में इतिहास को समझना, पढ़ना इसलिए जरूरी है क्योंकि उसे समझे बिना इंसान अपनी सृजनात्मकता के विकास की प्रक्रिया को भी नहीं समझ पाएगा।

यदि हम यह मानें कि शिक्षा की प्रारंभिक जिम्मेदारी बच्चे या शिक्षार्थी के प्रति और उसकी सृजनात्मकता को विकसित करने के प्रति है तो भी उसे व्यक्ति के रूप में इतिहास को जानना इसलिए जरूरी है क्योंकि उसके बिना वह अपनी सृजनात्मकता को समझ ही नहीं पाएगा। न ही यह समझ पाएगा कि मनुष्य की सृजनात्मकता के सामने, मनुष्य के रूप में उसकी सृजनात्मकता के सामने क्या चुनौतियां आज हैं और उन चुनौतियों में वह क्या कर सकता है। इन चुनौतियों का सामना पहले के मनुष्यों ने कैसे किया और आज का मनुष्य कैसे कर सकता है। पहले की चुनौतियां किस तरह की थीं और आज की चुनौतियां किस तरह की हैं। कई बार उन चुनौतियों के संदर्भ बदलते हैं, चुनौतियों का मर्म नहीं बदलता। उनके बदलते संदर्भ को समझना जरूरी होता है। उनके मर्म के साथ संदर्भ समझने के बाद वह अपना रास्ता तय कर सकता है कि इस परिस्थिति में क्या करना उचित है। अतः इतिहास एक तरह से औचित्य का ज्ञान भी है। इतिहास हमें यह बताता है कि किस समय क्या करना है, किस खास परिस्थिति में क्या उचित हुआ और क्या अनुचित हुआ। उचित और अनुचित का ज्ञान भी इतिहास के माध्यम से होता है। हम कह सकते हैं कि मनुष्य के विवेक को प्रेरित, विकसित करने वाला विषय या प्रक्रिया इतिहास को जानने की प्रक्रिया है। इसलिए बेकन का कथन याद आता है, 'इतिहास मनुष्य को बुद्धिमान बनाता है' (हिस्ट्री मेकेथ ए मैन वाइज)। इन्हीं अर्थों में बुद्धिमान बनाता है क्योंकि बुद्धि अंततः अनुभव पर आधारित होती है और बुद्धि का विकास अनुभव के आधार पर होता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य के अनुभव बढ़ते हैं त्यों-त्यों उनके विश्लेषण से उसकी बुद्धि, चिन्तन और चेतना का विकास भी होता है। इतिहास संपूर्ण मनुष्य जाति के अनुभव हैं। संपूर्ण मनुष्य जाति के

अनुभवों के आधार पर जब हम कुछ निष्कर्ष निकालते हैं तो वे हमारी बुद्धि को आगे बढ़ाने वाले निष्कर्ष होते हैं। अतः हम यह कह सकते हैं कि इतिहास मनुष्य को बुद्धिमान भी बनाता है, उसे रचनात्मक भी बनाता है।

इतिहास, दरअस्ल, मनुष्य जाति की प्रयोगशाला है, जिस तरह वैज्ञानिक की प्रयोगशाला होती है। उस प्रयोगशाला में वह कुछ प्रयोग करता है। जिनमें से कुछ सफल होते हैं, कुछ असफल होते हैं। सफल प्रयोगों को जानना तो जरूरी है ही क्योंकि उन्हीं के आधार पर हम आगे की खोज करते हैं। सफल प्रयोग के आधार पर हम एक नई खोज करते हैं और जो असफल हुआ उससे यह जानने की कोशिश करते हैं कि वह असफल क्यों हुआ, उसमें क्या कमी रह गई। बदलकर एक और प्रयोग के द्वारा दोबारा से हम उस प्रयोग को करने की कोशिश करते हैं। ठीक यही मनुष्य जाति करती है। एक वैज्ञानिक प्रोजेक्ट की तरह तो नहीं करती लेकिन मनुष्य जाति ने अपने विकास में क्या-क्या किया, उससे कहां क्या गलती हुई, कोई चीज क्यों असफल हो गई, कहां कोई चीज क्यों सफल हो गई ? जो सफल हो गई उसके क्या कारण थे, उस सफलता से आगे के लिए क्या मिला ? असफल होने पर क्या बाधा पैदा हो गई और क्यों किन कारणों से असफल हो गई ? अगर उन कारणों को मिटा दिया जाए तो क्या हम उस दिशा में और आगे बढ़ सकते हैं ? यह सारा ज्ञान भी इतिहास के द्वारा होता है। हम कह सकते हैं कि वह मनुष्य के भविष्य के लिए भी एक पृष्ठभूमि का काम करता है। बिना इतिहास जाने मनुष्य अपने भविष्य के बारे में कुछ तय नहीं कर सकता।

इतिहास, दरअस्ल, मनुष्य जाति की प्रयोगशाला है, जिस तरह वैज्ञानिक की प्रयोगशाला होती है। उस प्रयोगशाला में वह कुछ प्रयोग करता है। जिनमें से कुछ सफल होते हैं, कुछ असफल होते हैं। सफल प्रयोगों को जानना तो जरूरी है ही क्योंकि उन्हीं के आधार पर हम आगे की खोज करते हैं। सफल प्रयोग के आधार पर हम एक नई खोज करते हैं और जो असफल हुआ उससे यह जानने की कोशिश करते हैं कि वह असफल क्यों हुआ, उसमें क्या कमी रह गई।

मनुष्य एक आत्मचेतन प्राणी है। वह पशुओं या वनस्पति की तरह नहीं जीता। वह आत्मचेतन होने के नाते अपने भविष्य के बारे में भी सोचता है और आत्मचेतन होने के नाते वह सृष्टि की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने की योग्यता या सामर्थ्य पा लेता है। जिसे अन्य पशु या पक्षी नहीं पाते। हम यह देखते हैं कि आत्मचेतन होने के नाते मनुष्य में किसी भी प्रक्रिया में हस्तक्षेप करने की सामर्थ्य और इच्छा विकसित होती है। उस इच्छा को पूरा करने और उस सामर्थ्य को विकसित करने के लिए भी इतिहास का ज्ञान आवश्यक है। इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि प्रत्येक मनुष्य के लिए इतिहास का ज्ञान उसके उचित-अनुचित के ज्ञान के लिए, उसके विवेक के लिए, उसकी सृजनात्मकता के लिए जरूरी है। भविष्य को अपनी इच्छा से रूपायित कर सके, इसके लिए भी इतिहास जानना आवश्यक है।

प्रश्न : आपने इतिहास की शिक्षा के लिए व्यापक उद्देश्य और भूमिका सामने रखी हैं। लेकिन अभी जिस तरह इतिहास पढ़ाया जाता है चाहे स्कूलों में या कॉलेजों में, क्या वह इस दृष्टि को समाहित करता है ?

उत्तर : मैं यह समझता हूं कि अभी हम इतिहास नहीं पढ़ा रहे हैं। अभी हम केवल कुछ विवरण बता रहे हैं और उन विवरणों के पीछे एक चयन-दृष्टि भी काम करती है। क्योंकि सारे विवरण आप नहीं बता सकते हैं, इसलिए एक खास दृष्टि से खास तरह के समाज या व्यवस्था के लिए शिक्षार्थी को तैयार करना चाहते हैं। उस दृष्टि से इतिहास के तथ्यों का चयन होता है और उसी दृष्टि से तथ्यात्मक विवरण उनको बता दिए जाते हैं। इतिहास शिक्षण की अभी की प्रक्रिया शिक्षार्थियों में बुद्धिमत्ता या विवेक पैदा करती हो या अपने भविष्य के लिए एक आधार भूमि प्रदान करती हो, कम से कम अभी ऐसा नहीं हो रहा है।

अभी मोटेतौर पर होता यह है कि हम इतिहास को मानवीय इतिहास के व्यापक संदर्भ में नहीं रखते हैं। अपने समाज के इतिहास को भी एक व्यापक मानवीय समाज के इतिहास के संदर्भ में रखकर नहीं देखते हैं। वह कटा-कटा सा रहता है। जबकि होना यह चाहिए कि पूरी मनुष्य जाति के विकास के संदर्भ में किसी समाज के योगदान को रखा जाना चाहिए। किसी समाज ने अपनी भौगोलिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में आने

वाली चुनौतियों का मुकाबला किस तरह से किया ? उसकी सृजनात्मकता ने किस तरह और क्या रूप ग्रहण किए, यह बताया जाना जरूरी है। यही तो इतिहास को जानना है। लेकिन हम यह नहीं बताते। हम केवल यह बताते हैं कि अमुक राजा ने आक्रमण किया, अमुक राजा का शासन ऐसा था या अमुक राजा ने इमारतें बनवाईं। छोटे बच्चों को हम सिर्फ इतना ही बताते हैं। कॉलेज या एम.ए. स्तर पर कुछ वैचारिक दृष्टि से समझाने की कोशिश होती है। बच्चों को प्रारंभ से ही यह समझाना ज्यादा जरूरी है कि वे मनुष्य जाति के इतिहास का अद्यतन सुफल हैं। प्रत्येक बच्चा पूरी मनुष्य जाति के इतिहास का नवीनतम फल है या नवीनतम बीज कह लीजिए क्योंकि इससे आगे का फल विकसित होगा। इसे आगे के जीवन या मनुष्य जाति के आगे के जीवन के लिए क्या जानना जरूरी है जिससे कि वह पूरी मनुष्य जाति के विकास में अपना योगदान कर सके। हमारे स्कूलों, कॉलेजों या विश्वविद्यालयों में इस तरह से इतिहास नहीं पढ़ाया जाता। मान लीजिए हम सिंधु घाटी सभ्यता के बारे में पढ़ा रहे हैं। उसमें बता रहे हैं कि उसमें ये-ये चीजें मिली अथवा ऐसा-ऐसा था। यह नहीं बताया जाता कि पूरी मनुष्य जाति की सभ्यता के इतिहास में इसकी रचनात्मकता के क्या कारण थे ? क्या चुनौतियां थीं ? जितना भी आप जान पाते या ऐसी परिस्थिति में क्या किया जाना चाहिए था। नष्ट होने के कारणों को तो हम जानते ही नहीं हैं। इसलिए इसके बारे में कुछ ज्यादा कह भी नहीं सकते।

आर्यों की सभ्यता के बारे में हमारा सारा जोर यह रहता है कि आर्य यहीं के निवासी थे या बाहर से आए थे। आर्यों के इतिहास को लेकर बड़ा विवाद चल रहा है। आर्य यहां के हों या कहीं से आए हों, यह विवाद आप करते रहिए। लेकिन बच्चे को बजाए इसमें डालने के यह बताइए कि इस सभ्यता ने किस तरह से अपने जीवन की सृजनात्मकता को विकसित किया। क्या चुनौतियां उसके सामने थीं। उन चुनौतियों के हल उसने किस तरह से निकालने की कोशिश की। उसमें में से क्या चीजें हैं जो आज भी हमारे लिए उपयोगी हो सकती हैं। किन चीजों को केवल रूढ़ि मानकर हमें छोड़ देना चाहिए। क्योंकि इतिहास में बहुत कुछ ऐसा होता है जो पीछे छूट जाता है। उसको पुनर्जीवित करने की कोशिश करना बेकार है।

अभी हम इतिहास को अतीतजीविता की तरह पढ़ाते हैं- जबकि इतिहास भविष्य-दृष्टा है। उसे भविष्य-दृष्टा की दृष्टि से पढ़ाया जाना चाहिए, न कि अतीतजीविता की दृष्टि से। यही कारण है कि इतिहास की अलग-अलग व्याख्याओं के बावजूद इतिहास पढ़ने वाला व्यक्ति अधिकांश अतीतजीवी हो जाता है। वह हमेशा यही याद करता रहता है कि उस समय क्या हुआ था। बजाय इसे समझने के कि अब उसे क्या करना है। शायद मार्क्स का यह कथन है कि 'ऐतिहासिक अनिवार्यता का ज्ञान स्वतंत्रता है।' आज की ऐतिहासिक अनिवार्यता क्या है ? हम इतिहास को यहां तक नहीं लाते। हम केवल कुछ विवरणों तक उसको सीमित रखते हैं- और उन विवरणों को जानकर शिक्षार्थी को कोई विशेष लाभ नहीं होता, सिवाय इसके कि कभी-कभी वह इन पर मुग्ध हो सकता है। इसीलिए हम अक्सर पुरानी बात करते हैं कि ऐसा होता था। अतः आज भी ऐसा ही होना चाहिए। जैसे ही परिवर्तन होता है इतिहास की अतीतजीविता वाली दृष्टि में दीक्षित लोगों को अधिकांशतः यह परिवर्तन नहीं सुहाता। वे हमेशा उसमें बुराई ही देखते हैं और ऐसा सोचते हैं कि जो कुछ अतीत में हुआ था वही होते रहना चाहिए, जो दुनिया में कभी सम्भव नहीं होता है। हम यह कह सकते हैं कि फिलहाल इतिहास का अध्ययन और अध्यापन- इसके अपवाद हो सकते हैं- अधिकांशतः पढ़ने वाले को अतीतजीवी बनाता है, जबकि इतिहास पढ़ने का प्रयोजन ही वर्तमानजीवी और भविष्यजीवी होना है। खासतौर से वर्तमान को समझना और उसके आधार पर अपने भविष्य का निर्धारण करना। इतिहास पढ़ाने की अभी जो पद्धति है वह, दरअस्ल, इतिहास-सम्मत है नहीं। वे तो शिक्षार्थी को बता दिए जाने वाले अतीत के कुछ विवरण हैं।

प्रश्न : इतिहास के बारे में अक्सर यह कहा जाता है कि इतिहास विचारधाराओं का अखाड़ा है। इतिहास को किसी विचारधारा के माध्यम से समझने के प्रयास को कैसे समझा जाए ?

उत्तर : देखिए, यह बड़ा जटिल सवाल है। जटिल इसलिए है क्योंकि अंततः जब आप किसी भी चीज को

समझना चाहते हैं तो उसे कहां से देख रहे हैं, यह बहुत महत्त्वपूर्ण हो जाता है। उस वस्तु को आप कहां से और किसके माध्यम से देख रहे हैं, किस यंत्र के माध्यम से देख रहे हैं; यह उस वस्तु के रूप को आपके लिए बदल देता है। हाइजनबर्ग, जो कि बड़े वैज्ञानिक और नोबेल पुरस्कार विजेता थे, का सिद्धान्त है, 'यथार्थ को, जिसे आप यथार्थ कहते हैं, उसे आप यथावत कभी नहीं जान सकते'। क्योंकि किसी न किसी माध्यम से आप उसे जानेंगे। आप किसी न किसी यंत्र के माध्यम से जानेंगे, इंद्रियां भी एक प्रकार से यंत्र हैं और जितने भी हमारे यंत्र हैं वे वस्तुतः हमारी इंद्रियों का ही विस्तार हैं। बीच में किसी माध्यम का होना, आपके और यथार्थ के बीच; अर्थात् चेतना और यथार्थ के बीच, वह यथार्थ को आपके लिए रूपांतरित कर देता है। आंख भी एक माध्यम है; वह यथार्थ को आपके लिए रूपांतरित कर देता है। जबकि हम यह मानकर चलते हैं कि हमने जो कुछ भी जाना है वही अन्तिम है। क्योंकि हमारा यंत्र या माध्यम या दृष्टिकोण हमको यह बता रहा है। इससे अलग-अलग दृष्टियां विकसित होती हैं। इसीलिए इतिहास इसके अलावा और कुछ नहीं है। जब हम यह मानते हैं कि यथार्थ को हम यथावत जान ही नहीं सकते तो इसका एक तात्पर्य यह भी है कि इतिहास को भी हम यथावत नहीं जान सकते। इसलिए हम उसको एक दृष्टि तो मान सकते हैं जो इतिहास की समझ विकसित करने या उसको समझने में हमारी मदद करती है। लेकिन वह उसका अन्त नहीं है, वह उसकी कसौटी नहीं है। इसलिए कोई भी दृष्टिकोण (विचारधारा शब्द का प्रयोग मैं शायद इतिहास के संदर्भ में नहीं करना चाहूंगा क्योंकि यह थोड़ी संकीर्णता लिए हुए है) जैसे, मार्क्सवादी दृष्टिकोण या आदर्शवादी दृष्टिकोण या रोमेंटिक दृष्टिकोण या चक्रिक काल को मानने वाला भारतीय दृष्टिकोण; ये दृष्टिकोण मनुष्य के इतिहास को समझने में हमारी मदद करते हैं। इसका मतलब होगा कि इस तरह इतिहास को देखा जा सकता है। दूसरी तरह से भी देखा जा सकता है और तीसरी तरह से भी देखा जा सकता है।

इतिहास यही बताता है कि मनुष्य एक सृजनात्मक प्राणी है और सृजनात्मकता के लिए स्वतंत्रता एक अनिवार्य शर्त है। जो स्वतंत्र नहीं है वह सृजनात्मक कैसे हो सकता है ! यदि वह स्वतंत्र नहीं है तो वह जो कुछ भी करेगा दूसरों के निर्देश से करेगा। अतः सृजनात्मकता के लिए स्वतंत्रता पूर्व शर्त है। इसलिए मनुष्य जाति और सृजनात्मकता के विकास के लिए प्रत्येक समाज का स्वतंत्र होना अनिवार्य है।

जितने कोणों से हम अतीत को देख सकते हैं, देखने की कोशिश करनी चाहिए। लेकिन यदि हम यह मान लें कि मेरे कोण के अलावा और किसी कोण से नहीं देखा जा सकता तो यह एक भ्रम है और यह अवैज्ञानिक है। यदि हम हाइजनबर्ग के सिद्धान्त को मानते हैं तो यह एक अवैज्ञानिक बात होगी कि मेरा माध्यम जो बता रहा है वही सही है जबकि माध्यम का बीच में होना ही उसको रूपांतरित कर रहा है। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण इतिहास को समझने के लिए उपयोगी तो हो सकते हैं, इसका उपयोग हम करें, लेकिन किसी में भी समग्र दृष्टि नहीं आ सकती। जैसे मनुष्य के जीवन को आप किसी एक विद्या से संपूर्णता में नहीं समझ सकते, उसके लिए आपको अलग-अलग ज्ञान की शाखाओं की आवश्यकता होती है, उसी तरह इतिहास भी तो मनुष्य का जीवन ही है। मनुष्य के जीवन के अलावा वह और कुछ नहीं है। इसलिए मनुष्य के सारे जीवन को जैसे हम किसी एक विद्या में, किसी एक ज्ञान की शाखा में नहीं अंटा सकते हैं, उसी तरह से हम इतिहास को किसी एक दृष्टिकोण में नहीं अंटा सकते। जो लोग ऐसा करने की कोशिश करते हैं, जैसा मैंने कहा कि इतिहास हमको अतीतजीवी बना देता है, वैसे ही ये दृष्टिकोण, जिनको हम अलग-अलग विचारधाराएं कहते हैं; इतिहास को अखाड़ा बना लेते हैं। अलग-अलग दृष्टिकोण भी हमारी सीमा बन जाते हैं। यानी हम मनुष्य को समग्रता में देखने के बजाय उसे एक खास परिभाषा में देखने की कोशिश करते हैं, जबकि मनुष्य को इस तरह से परिभाषित नहीं किया जा सकता। वह एक बहुआयामी सृजनशीलता है, बहुस्तरीय सृजनशीलता है, बहुआयामी चेतना है। अतः उस बहुआयामिता को कोई एक दृष्टि नहीं पकड़ सकती है। ऐसा करना तो इतिहास के साथ खिलवाड़ करना है। लेकिन उसकी उपयोगिता स्वीकार करनी चाहिए कि एक खास दृष्टि यह भी है, कुछ चीजें इससे भी समझ में आती हैं। कुछ चीजें दूसरे दृष्टिकोण से भी समझ में आती हैं। जैसे यह कहा जाता है कि मनुष्य एक युग की पैदाइश

है। उसी तरह हम यह कह सकते हैं कि विचार भी मनुष्य की पैदाइश है। किसी युग में यदि कोई परिवर्तन होता है तो वह कुछ मनुष्यों के द्वारा ही लाया जाता है। सारा समाज एक साथ परिवर्तित नहीं होता। यदि एक नया दृष्टिकोण आता है तो सारा समाज उसे एक साथ स्वीकार नहीं कर लेता है। पहले वह किसी एक व्यक्ति में वह प्रस्फुटित होता है जिसे हम महापुरुष कहें या विचारक कहें। जैसा कि एम. एन. रॉय ने कभी कहा था 'दुनिया में विचारों का विकास काफिरों के द्वारा हुआ है' (काफिर शब्द का इस्तेमाल मैं यहां व्यंग्य में कर रहा हूं)। अर्थात् उनके द्वारा जो लोग असहमत हुए हैं, गैर-समझौतावादी रहे हैं। उन्होंने विचारों में विकास किया है। अगर आप हर विचार से सहमत हैं तो विचार आगे बढ़ेगा ही नहीं। आप कैसे कह सकते हैं कि कोई भी विचार अन्तिम विचार है या कोई भी दृष्टिकोण अन्तिम दृष्टिकोण है। ऐसा कहना अवैज्ञानिक होगा।

विज्ञान कभी यह नहीं मान सकता कि जो मैंने आज जाना उसके अलावा कोई और कभी कुछ जान ही नहीं सकता। वैज्ञानिक दृष्टि हमें एक खुलापन देती है, इसी से इतिहास को समझना चाहिए। इतिहास को महापुरुष भी बनाते हैं और बुरे पुरुष भी बनाते हैं, कई दफा उन्होंने भी बनाया है। इतिहास को आर्थिक जीवन भी बनाता है। इतिहास को एक स्वतंत्र चिन्तन भी आगे बढ़ाता है। विचार के विकास की तरह भी इतिहास समझा जा सकता है। मनुष्य का जीवन कितना वैविध्यपूर्ण रहा है, कितनी वैविध्यपूर्ण सृजनात्मकता रही है, इसको जानने के लिए सब दृष्टियों का उपयोग किया जा सकता है। लेकिन किसी एक दृष्टि में मनुष्य जाति के पूरे इतिहास को नहीं अंटाया जा सकता है।

प्रश्न : उपनिवेश काल में इतिहास को राष्ट्रवाद के विकास के एक जरिए के रूप में देखा गया और इसी दृष्टि से इतिहास भी रचा गया। यह माना गया कि इतिहास राष्ट्रवाद के विकास का माध्यम है। यह एक ओर अंधराष्ट्रवाद की तरफ ले जा सकता है तो दूसरी ओर अतीतजीविता की तरफ। इतिहास और राष्ट्रवाद के संबंध को कैसे देखा जाना चाहिए ?

उत्तर : देखिए, राष्ट्रीयता और राष्ट्रवाद में फर्क करना चाहिए। राष्ट्रवाद एक बीमारी है। उसे अंध कहने की जरूरत ही नहीं है। डॉ. राधाकृष्णन्, रवीन्द्रनाथ टैगोर और एम. एन. रॉय ने इस समस्या की तरफ ध्यान आकर्षित किया है। राष्ट्रवाद एक तरह की बीमारी है क्योंकि वह राष्ट्र को सर्वोच्य मानकर चलता है और राष्ट्र एक अमूर्त इकाई है। उसे सर्वोच्य मानने का क्या मतलब है ? किस चीज को सर्वोच्य माना जाए ? राष्ट्र को, जिसे राज्य चला रहा है या उस राज्य को जिसे एक दल चला रहा है ? औपनिवेशिक काल में स्वतंत्रता काम्य थी। स्वतंत्रता राष्ट्र की स्वतंत्रता थी, उस समाज की स्वतंत्रता थी; जो दूसरों के अधीन था। हमारा उद्देश्य इतिहास में स्वतंत्रता की प्रतिष्ठा करना था और उस स्वतंत्रता को बाधित करने वाले तत्वों की पहचान करना था। जिन इतिहासकारों या इतिहास-दृष्टि ने यह किया, वह अधिक महत्त्वपूर्ण इतिहास-दृष्टि थी, बजाय उस दृष्टि के जो केवल राष्ट्रगान करती थी। इस फर्क को हमें समझना चाहिए।

औपनिवेशिक इतिहासकारों की एक ऐसी धारा थी जिन्होंने यह प्रतिपादित करने की कोशिश की कि यहां कुछ नहीं था। इस देश का जो भी विकास हुआ वह सब बाहर के लोगों ने किया। वे मानते थे कि यहां के लोगों में योग्यता नहीं है, सामर्थ्य नहीं है, इन्होंने जीवन में कुछ हासिल नहीं किया। इस दृष्टि का विरोध तो ठीक था क्योंकि किसी भी मनुष्य जाति या समाज के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें ज्ञान नहीं है। अगर ज्ञान नहीं है तो वह समाज चला कैसे ? संभव है वह दूसरे समाजों के अनुसार नहीं चलता होगा। जिसे वे समाज ज्ञान मानते थे, संभव है वह उसे नहीं मानता होगा। जिसे वे ईश्वर मानते थे वह उसे नहीं मानता होगा। जैसा जीवन वे जीना चाहते थे, वह वैसा नहीं जीना चाह रहा होगा। लेकिन प्रत्येक समाज अपने तरीके से जीवन जीना चाहता रहा है। अलग-अलग देशों में हम इसका विवरण देख पाते हैं।

प्रत्येक समाज स्वतंत्र समाज होना चाहिए और जो लोग स्वतंत्र समाज को गुलाम या उपनिवेश बनाना चाहते हैं, उसका विरोध इतिहास करेगा। क्योंकि इतिहास यही बताता है कि मनुष्य एक सृजनात्मक प्राणी है और

सृजनात्मकता के लिए स्वतंत्रता एक अनिवार्य शर्त है। जो स्वतंत्र नहीं है वह सृजनात्मक कैसे हो सकता है ! यदि वह स्वतंत्र नहीं है तो वह जो कुछ भी करेगा दूसरों के निर्देश से करेगा। अतः सृजनात्मकता के लिए स्वतंत्रता पूर्व शर्त है। इसलिए मनुष्य जाति और सृजनात्मकता के विकास के लिए प्रत्येक समाज का स्वतंत्र होना अनिवार्य है। उसकी स्वतंत्रता में बाधक होना या यह मानना कि वह समाज स्वतंत्रता के योग्य नहीं है, ऐसा कहने की कोशिश करने वाले इतिहास का या इतिहास-दृष्टि का विरोध तो किया जाना चाहिए- क्योंकि यह कहकर वह एक तरह से मनुष्य जाति के इतिहास का ही विरोध कर रहा है।

कोई राष्ट्र अपने को दूसरे राष्ट्रों से श्रेष्ठ माने, सर्वोच्च माने या माने कि हमारे मुकाबले का कोई और राष्ट्र नहीं है; ऐसे राष्ट्रवाद का दावा ही तो पश्चिमी राष्ट्रों का था। जिन देशों ने उपनेविशवाद फैलाया उनका भी यही कहना था कि हम सभ्य हैं और बाकी देश सभ्य नहीं हैं और इनको हम सभ्य बना रहे हैं। उन्होंने उपनिवेशवाद के अपने तर्क को एक वैचारिक आधार यह कहकर दिया कि यह श्वेत लोगों का बोझ है कि वे एशिया, अफ्रिका और लेटिन अमेरिका के देशों के लोगों को सभ्य बनाएं। इसके आर्थिक और राजनीतिक कारण जो भी रहे हों, लेकिन उन्होंने उसके पीछे ऐसी मंशा दिखाई। धर्म-प्रचारक भी ऐसा ही मानते हैं कि हमारा धर्म सही है और दूसरों का धर्म सही नहीं है। अतः इन्हें हम समझाएंगे कि धर्म क्या होता है। चाहे जबरदस्ती समझाएं या प्रेम से, लेकिन हम इनको सही रास्ते पर लाएंगे। इस प्रकार की इतिहास-दृष्टि का विरोध करना तो अनिवार्य था। उस विरोध में राष्ट्रवादी इतिहास की भी एक धारा बन गई। यद्यपि इसने देश को स्वतंत्रता हासिल करने या लोगों में स्वतंत्रता का भाव पैदा करने या स्वतंत्रता के लिए आत्म-विश्वास का भाव पैदा करने में भूमिका निभाई। लेकिन यह उचित नहीं था क्योंकि आत्म-विश्वास भी हमेशा खरे आधार पर होना चाहिए। अगर आत्म-विश्वास का आधार सही नहीं है तो वह आत्म-विश्वास आगे जाकर नुक्सानदेह साबित होता है। और इसीलिए यह कहा जा सकता है कि रूढ़िवाद या संस्कृति या सांस्कृतिकता के नाम पर जितनी जड़ता दिखाई देती है, यह इसी इतिहास-दृष्टि का परिणाम है। यह मानना कि यही संस्कृति है, इसके अलावा और कुछ नहीं हो सकता यह भी इस तरह की इतिहास-दृष्टि का एक परिणाम है। यदि राष्ट्रवादी दृष्टि वास्तविक या स्वतत्रंता कामी इतिहास-दृष्टि होती तो वह दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान करने वाली दृष्टि भी होती। लेकिन क्योंकि वह दूसरों की स्वतंत्रता का सम्मान करने वाली दृष्टि नहीं है, इसीलिए वह मनुष्य जाति के समाज में एक बीमारी की तरह आया है।

> ***सत्य से बड़ी कोई चीज नहीं हो सकती। राष्ट्र भी सत्य से बड़ी चीज नहीं है। इसे हमें समझना चाहिए। सत्य को, मनुष्य के सत्य को जानने की कोशिश करना ही इतिहास को जानना है- और यह सत्य उसकी सृजनात्मकता है। मनुष्य की सृजनात्मकता ही मनुष्य का सत्य है। इस सृजनात्मकता के रूपों का विकास कैसे हुआ ? यह सृजनात्मकता अभी भी कैसे गतिशील है ? यदि इतिहास का शिक्षक इस परिप्रेक्ष्य के बिना तथ्यों को पढ़ा रहा है तो वह इतिहास के माध्यम से अपने विद्यार्थियों को अतीतजीवी बना रहा होगा या एक नीरस विषय की तरह मजबूरी में इम्तिहान पास करने के लिए पढ़ा रहा होगा।***

प्रश्न : भारत में आजकल सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का एक नारा लगाया जाता है जो ये मानते हैं कि हमारे समस्त ज्ञान का स्रोत प्राचीन संस्कृति और प्राचीन ग्रन्थ हैं। यह अलग बात है कि उसे खोजा नहीं गया है लेकिन वह सबसे श्रेष्ठ है। मानव समाज के लिए वे इसे ही श्रेयस् मानते हैं। इतिहास के संदर्भ में इस सांस्कृतिक राष्ट्रवादी दृष्टि को कैसे समझें ?

उत्तर : यदि ऐसा है तो, जैसा कि मैंने पहले कहा, यह तो इतिहास को रोक देना है। यह मानना कि जितना ज्ञान था वह प्राप्त हो चुका है और आगे और कुछ नहीं प्राप्त करना है, केवल उसकी व्याख्याएं करनी हैं या उसको समझना है; यह तो मनुष्य जाति की सृजनात्मकता का विरोधी दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण बताता है कि सारी प्रक्रिया रुक चुकी है। यह तो मानव समाज की प्रगति को रोकने की कोशिश की जा रही है। वर्तमान समाज में कुछ अच्छा होगा तो कुछ बुरा भी होगा। जैसा कि मैंने कहा, यह एक प्रयोगशाला है और

इस प्रयोगशाला में कोई प्रयोग सफल होगा तो कोई असफल भी होगा। आप असफल प्रयोग को समझें, यह बात समझ में आती है। और असफल प्रयोग को समझकर उसके आधार पर आगे बढ़ें, यह भी समझ में आता है। लेकिन आप प्रयोग होने ही न दें कि सब कुछ जान लिया गया है, यह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद है ही नहीं। क्योंकि इसमें संस्कृति कहीं नहीं है।

संस्कृति एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। संस्कृति कोई जड़ प्रक्रिया नहीं है। जो संस्कृति के नाम पर सभी तरह के परिवर्तन को रोक देना चाहते हैं यह सांस्कृतिक नहीं, संस्कृति विरोधी दृष्टिकोण है। इसलिए मैं सांस्कृतिक राष्ट्रवाद शब्द को ही गलत मानता हूं। क्योंकि दरअस्ल वे सांस्कृतिक काम कर ही नहीं रहे हैं। और जब हम इस शब्द का इस्तेमाल उनके लिए करते हैं, तब हम कहीं न कहीं यह मान ही लेते है कि संस्कृति तो वही चीज है और बाकी जो हो रहा है वह संस्कृति नहीं है- जबकि संस्कृति एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। संस्कृति मनुष्य की सृजनात्मकता है। दूसरे शब्दों में कहना चाहें तो मनुष्य की सृजनात्मकता ही उसकी संस्कृति है और सृजनात्मकता कभी रुक नहीं सकती। ऐसा नहीं है कि सारा ज्ञान या सृजनात्मकता पांच हजार या चार हजार साल पहले समाप्त हो गई और अब मनुष्य जाति में कुछ बचा ही नहीं है। इसका मतलब है कि जीवन का कोई अर्थ ही नहीं है, फिर तो एक तरह से प्रलय हो गई समझिए। अर्थात् हमारे शरीर नष्ट नहीं हुए लेकिन हमारी चेतना जड़ हो गई है। यह मानना एक प्रकार से वेदविरोधी दृष्टि है।

वेद को ज्ञान का स्रोत मानना, अभी भी उससे सीखना; यह एक अलग दृष्टि है। इस मायने में आप किसी भी चीज से कभी भी सीख सकते हैं। बहुत से सार्वकालिक सत्य होते हैं, जो इस तरह की पुस्तकों में हमें मिल सकते हैं। लेकिन यह मानना कि इसके अलावा और कुछ हो नहीं सकता, यह तो एक प्रकार से जड़ता की दृष्टि है। इसको सांस्कृतिक दृष्टि नहीं कह सकते। इसलिए यह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद नहीं है, यह संस्कृति विरोधी है। यह राष्ट्रवाद भी नहीं है क्योंकि राष्ट्र को भी मृत मानकर चल रहा है कि अब इस राष्ट्र को कुछ नहीं करना है, इसको वापस वहीं लौट जाना है। हम यह कह सकते हैं कि यह एक राष्ट्र विरोधी दृष्टि है और संस्कृति विरोधी भी। कृपया इसके लिए सांस्कृतिक राष्ट्रवाद शब्द का प्रयोग बन्द कर दीजिए।

प्रश्न : यह व्यापक दृष्टि इतिहास शिक्षण को एक नया आयाम देती है। लेकिन एक समस्या यह है कि हमारा शिक्षक जिसे कि पाठ्यपुस्तकों से इतिहास पढ़ाना होता है और पाठ्यपुस्तकें उसे बनाकर दे दी जाती हैं, वह इस व्यापक दृष्टि से संपन्न नहीं होता। यदि हम इस दृष्टि से शिक्षक को संपन्न करना चाहें तो क्या किए जाने की आवश्यकता है ? कुछ लोगों का मानना है कि इस वैचारिक बहस से शिक्षकों का क्या लेना-देना है और खासकर आरंभिक शिक्षा के शिक्षकों को। आप शिक्षकों की भूमिका और इसके लिए उनकी तैयारी को कैसे देखते हैं ?

उत्तर : मेरा ख्याल है कि इतिहास के शिक्षकों के लिए एक प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए जैसा कि अन्य विषयों के लिए किए जाते हैं। दिक्कत यह है कि इतिहास के शिक्षकों का अलग से कोई प्रशिक्षण नहीं होता। हम उन्हें अन्य विषयों की भांति इतिहास पढ़ाने की सामान्य विधियां बता देते हैं। लेकिन यदि इतिहास को एक महत्त्वपूर्ण विषय के रूप में देखा जाए तो उसके लिए अलग से प्रशिक्षण होना चाहिए जिससे कि इस विषय की अलग से दृष्टि विकसित हो। उनके लिए एक प्रशिक्षण कार्यक्रम हो। उनके साथ में संवाद किया जाए, उनके साथ बहस की जाए और यह समझने और स्पष्ट करने की कोशिश होनी चाहिए कि हम इतिहास किन्हीं व्यक्तियों या कुछ घटनाओं का नहीं बता रहें है। हम मनुष्य की सृजनात्मकता के रूपों का इतिहास बता रहे हैं। और इसलिए उसे एक व्यापक मानवीय संदर्भ में रखकर देखने की जरूरत है। उसमें किसी तरह के राष्ट्रवाद की जरूरत नहीं है।

देखिए, सत्य से बड़ी कोई चीज नहीं हो सकती। राष्ट्र भी सत्य से बड़ी चीज नहीं है। इसे हमें समझना चाहिए। सत्य को, मनुष्य के सत्य को जानने की कोशिश करना ही इतिहास को जानना है- और यह सत्य उसकी सृजनात्मकता है। मनुष्य की सृजनात्मकता ही मनुष्य का सत्य है। इस सृजनात्मकता के रूपों का विकास कैसे

हुआ? यह सृजनात्मकता अभी भी कैसे गतिशील है ? यदि इतिहास का शिक्षक इस परिप्रेक्ष्य के बिना तथ्यों को पढ़ा रहा है तो वह इतिहास के माध्यम से अपने शिक्षार्थियों को अतीतजीवी बना रहा होगा या एक नीरस विषय की तरह मजबूरी में इम्तिहान पास करने के लिए पढ़ा रहा होगा। यदि शिक्षार्थी कुछ सीख रहा होगा तो अतीतजीवी हो रहा होगा और नहीं सीख रहा होगा तो केवल इम्तिहान देकर अपना समय व्यर्थ गंवा रहा होगा। लेकिन यदि हम शिक्षार्थी को इतिहास के आज के मोड़ पर खड़ा एक व्यक्ति बनाना चाहते हैं जो अपने भविष्य को देख रहा है तो इतिहास के शिक्षकों का अलग से प्रशिक्षण या उनके साथ बातचीत की जानी चाहिए। और उनके सामने इस दृष्टि को खोलने की कोशिश करनी चाहिए। मैं यह मानता हूं कि कोई भी व्यक्ति मूर्ख नहीं होता। उसे सिर्फ अवसर नहीं मिलते जहां वह अपनी बुद्धि का उपयोग कर सके। ऐसा मानना कि इतिहास के शिक्षक वैचारिक बहसों को नहीं समझ पाएंगे, मैं इसे मनुष्य जाति की प्रतिभा का अपमान मानता हूं। मैं मानता हूं कि कोई भी व्यक्ति और खासकर जो यह काम कर रहा है वह तो निश्चय ही समझ सकता है। कोई कारण नहीं है कि वह उसको नहीं समझ पाए। ◆